International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 08-04-2023, Accepted: 09-05-2023, Published: 23-05-2023
Volume 5, Issue 2, 2023, Page No. 20-22

भक्तिकाल में सामाजिक समरसता की चेतना

डॉ. मीनाक्षी गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री अरबिंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
भक्ति–आंदोलन इतिहास का अत्यंत गौरवपूर्ण कालखंड है। भक्ति को काव्य–मूल्य एवं जीवन मूल्य के रूप में स्थापित करने वाली इस कविता का समय मध्यकाल की लगभग चार शताब्दियों तक फैला हुआ हैं। जिसने मध्यकाल के सामंतवादी घेरे में जकड़े मनुष्य को मानवतावादी चेतना प्रदान करने का प्रथम प्रयास किया। भक्तिकाव्य में धर्म और भक्ति की केन्द्रीयता के कारण ये केवल पूजा–पाठ, उपासना, दैन्य और निराश लोगों के दुःखों से मुक्ति और सुख भोगने कि कविता नहीं है बल्कि ये धर्म और भक्ति के आवरण में सामाजिक अन्याय और मानव मूल्य की व्यवस्था के लिये खड़ा होने वाला और उसके लिये संघर्ष करने वाली कविता हैं। भक्तिकाव्य मनुष्यता के प्रति प्रतिबद्धता का काव्य है। जिसके कारण भक्ति काव्य में पहली बार मनुष्य के समानता की बात करते हुए नई मानवतावादी धारा का सूत्रपात होता है। भक्तिकाव्य में पहली बार वर्ग, वर्ण, जाति,नस्ल, धर्म और संप्रदाय के भेद–भाव और बन्धनों को अमान्य घोषित करते हुए मानव मात्र के समानता पर जोड़ देता है। संत कवियों का मुख्य लक्ष्य केवल हिंदू–मुस्लिम एकता, वर्ण व्यवस्था पर प्रहार, धर्मिक पाखंडों पर आक्रमण करना नहीं था बल्कि एक ऐसा संदेश देना था जिसमें सभी मनुष्य सत्यनिष्ठ होकर अपने जीवन का संचालन करें। भक्तिकाव्य लोकजागरण का क्रांतिकारी साहित्य है। जिसमें पहली बार रचनाकारों को अभिव्यक्ति कि आजादी मिली। उन्होंने अपने निजत्व को जनता के समक्ष प्रकट किया। इससे पहले जहाँ कविता राजा और सामंतो कि झूठी तारीफों में लिखी जाती थी वहीं भक्तिकाल के कवि ने अपने एक आदर्श नायक या आम जन को अपनी कविता के केंद्र ला कर लोक के कवि बनें।

मूल शब्दः भक्तिकाल, भक्ति–आन्दोलन, सामाजिक सरोकार, लोकजागरण, हिंदू–मुस्लिम एकता, सामंजस्य, प्रेम

भक्ति–आंदोलन इतिहास का अत्यंत गौरवपूर्ण कालखंड है। भक्ति को काव्य–मूल्य एवं जीवन मूल्य के रूप में स्थापित करने वाली इस कविता का समय मध्यकाल कि लगभग चार शताब्दियों तक फैला हुआ हैं। जिसने मध्यकाल के सामंतवादी घेरे में जकड़े मनुष्य को मानवतावादी चेतना प्रदान करने का प्रथम प्रयास किया। मैनेजर पांडेय इसलिए भक्ति आंदोलन को केवल कविता का आंदोलन नहीं मानते, बल्कि सांस्कृतिक आंदोलन एवं सामजिक आंदोलन के रूप में मानते हुए लिखते हैं कि, "भक्ति आंदोलन के व्यापक और स्थायी प्रभाव का एक कारण यह है कि उसमें भारतीय संस्कृति के अतीत कि स्मृति है, अपने समय के समाज तथा संस्कृति कि सजग चेतना है और भविष्य कि गहरी चिंता भी है। यह केवल सांस्कृतिक आंदोलन ही नहीं है,बल्कि एक व्यापक सामाजिक आंदोलन भी है; क्योंकि उसमें संस्कृत के विभिन्न रूपों में जनता के सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति मिलती है।"[1]
भारतीय जातिय चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली इस कविता को अपने वैविध्य, गहराई एवं लोकव्यापी स्वरुप के कारण हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहलाने का गौरव प्राप्त है। भक्तिकाव्य में धर्म और भक्ति कि केन्द्रीयता के कारण ये केवल पूजा–पाठ, उपासना, दैन्य और निराश लोगों के दुःखों से मुक्ति और सुख भोगने की कविता नहीं है बल्कि ये धर्म और भक्ति के आवरण में सामाजिक अन्याय और मानव मूल्य की व्यवस्था के लिये खड़ा होने वाला और उसके लिये संघर्ष करने वाली कविता हैं।
भक्तिकाव्य सर्वप्रथम सामंती–विरोधी लोकजागरण का काव्य है। आदिकाल में जहाँ सामंती जीवन मूल्यों की प्रबलता थी और कविता सामंती जीवन मूल्यों की छांव में विकसित हो रही थी, वहीं भक्तिकाव्य इसका विरोध करती है। "भक्ति–साहित्य सामंती–विरोधी लोक जागरण का क्रांतिकारी साहित्य है, क्योंकि वह संस्कृत–अपभ्रंश की दरबारी परंपरा और रीतिवाद की पतनशील धारा का वेग उलट कर नई मानवतावादी प्राणधारा का सूत्रपात करती है।"[2] पन्द्रहवीं–सोलहवीं शताब्दियों में व्यापारिक पूंजीवाद के विकास के समानांतर ही व्यापारी, जुलाहे, कारीगर और गरीब किसानों का एक बड़ा तबका उभर रहा था। जो किसी भी समृद्ध काल की सुखद और नाजुक कल्पना के मुँह पर करारा तमाचा था –

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न, चाकर को चाकरी।[3]

भक्तिकाव्य मनुष्यता के प्रति प्रतिबद्धता का काव्य है। जिसके कारण भक्ति काव्य में पहली बार मनुष्य के समानता की बात करते हुए नई मानवता वादी धारा का सूत्रपात होता है। भक्तिकाल में कवि पहली बार प्रश्न करते हैं कि सभी मनुष्यों का उद्‌गम स्थल एक ही है तो उनके बीच जाति, धर्म, अमीर–गरीब, ऊँच–नीच का भेद कैसा?

"एक बिंदु ते विश्व रचौ है ,को ब्राहमण को सूदा ?
एक बूंद एक मलमूत्र , एक चाम एक गूदा।
एक जोति तें सब उपजा ,को ब्राहमण को सूदा।।"[4]

भक्तिकाव्य में पहली बार वर्ग, वर्ण, जाति,नस्ल, धर्म और संप्रदाय के भेद–भाव और बन्धनों को अमान्य घोषित करते हुए मानव मात्र के समानता पर जोड़ देता है। इन सवालों ने निम्न जाति के जनता में आत्म गौरव का भाव जगाया। इसलिए आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "कबीर ने नाजुक मौके पर जनता के एक बड़े भाग को संभाला और नीची कही जाने वाली जातियों के मन में आत्म गौरव का भाव भरा। जो सदियों से भेदभाव के कारण सामाजिक अमानवियता का दंश झेलने को बाध्य थे।" सामाजिक चेतना का भाव संत काव्य के कवियों की रचनाशीलता में अन्य के मुकाबले प्रबल रूप से दिखता है। जो वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त धार्मिक पाखंडों, ब्रह्मचारों एवं अंधविश्वासों को भी अपने आक्रमण का निशाना बनाती है। जन्म के आधार पर बनाए गए मनुष्य की कोटियों का निर्धारण करने वाली वर्ण व्यवस्था की अंधता को इन

कवियों ने बार–बार उद्घाटित किया है। उनका मानना था कि ईश्वर के बनाए हुए इस सृष्टि में सभी समान है, इसलिए वे ब्राह्मण औए शुद्र में भेद करने वाली जीवन दृष्टि को ललकारते है –

"जो तू बाह्मन बभनी जाया
आन बाट काहे नहीं आया।"[6]

संत कवियों का मुख्य लक्ष्य केवल हिंदू–मुस्लिम एकता, वर्ण व्यवस्था पर प्रहार, धर्मिक पाखंडों पर आक्रमण करना नहीं था बल्कि एक ऐसा संदेश देना था जिसमें सभी मनुष्य सत्यनिष्ठ होकर अपने जीवन का संचालन करें। जैसाकि शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, "हिंदू–मुस्लिम एकता इन संतों का लक्ष्य नहीं था वरन् भक्ति का एक ऐसा मार्ग निकलना, उसका ऐसा संदेश देना इनका लक्ष्य था, जिस पर किसी प्रकार की भेद–बुद्धि से रहित मनुष्य सात्विक अंतःकरण और मन से चल सके, उसे बिना किसी हिचक के सुन और सहेज सके।"[7]
मानव के असमानता का सबसे बड़ा विभेद स्त्री–पुरुष की असमानता में है। स्त्री को हमेशा एक जनानी के रूप में ही समझा जाता है, उसे सयानी कभी नहीं समझा जाता, परंतु वर्तमान में जरूर स्त्री अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रही है और समाज में अपनी एक विशिष्ट पहचान बना रही है। लेकिन इस विशिष्ट पहचान बनाने की नींव भक्ति काल में रख दी गई थी। मीरा का काव्य इसका उदाहरण है जिसने स्त्री होने के बावजूद साधुओं की संगति में लोक–लाज का भय लिए बिना आती है और पति के रहते हुए भी कहती हैं, 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई'। इसलिए मीरा के काव्य में सर्वप्रथम राज सत्ता, पुरुष सत्ता, लोकरूढ़ि के विरूद्ध विद्रोह का स्वर जितना प्रखर है उतना अन्य कवि के यहाँ उस काल में नहीं है। मैनेजर पांडेय लिखते हैं कि, ष्उनकी कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और यातना की अभिव्यक्ति है तो दूसरी और उस व्यवस्था के बन्धनों का पूरी तरह निषेध और उससे स्वंतत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है।"[8]
सूरदास के काव्य में स्त्री का सहज और स्वतंत्र रूप देखने को मिलता है। सूरदास ने पहली बार स्त्री को घर की चार दीवारियों से बाहर निकाल बाजार में ला कर खड़ा करते है। सूर की स्त्री अधिक तार्किक और विद्रोही है जो ज्ञान को चुनौती देते हुए प्रेम के प्रगाढ़ रूप का दर्शन देते है और लोक व वेद के किसी बंधन को नहीं मानती है –

"ऊधौ मन मने की बात।
दाख छुहारा छाड़ि अमृत फल,विषकीरा विष खात।
ज्यों चकोर कौ देई कपूर कोऊ,तजि अंगार न आघात।"[9]

इसी तरह गुरु नानक भी स्त्री की अस्मिता को सम्मान देते है तथा एक पुरुष का वजूद स्त्री से ही मानते है। नानक के अनुसार "स्त्री के द्वारा ही हम गर्भ में धारण किए जाते हैं और उसी से जनम लेते हैं। उसी से मंगनी होती है,उसी से विवाह होता है।स्त्री से हमारी (जीवन–पर्यंत की) मैत्री होती है। उसी का क्रम चलता रहता है। एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी स्त्री खोजनी पड़ती है। स्त्री हमें बंधन में रखती है। फिर हम उस स्त्री को मंद क्यों कहें? जिससे महान पुरुष जन्म लेते हैं।"[10]

"भंडि जन्मीसे भंडि निम्मिए भंडि मंगणु बीयाहु।
भंढहु होवै दोसती, भंढहु चले राहु।
भंडु मुआ भंडु भालीए भंडिहोने बंधातु।
सो किन्न मंदा आखिए जितु जंमहि राजानु।।"[11]

सामाजिक व्यवस्था के प्रबल होने के कारण सभी भक्त कवियों कि धारणा स्त्री के प्रति एक जैसी नहीं थी। कुछ कवियों कि नकारात्मक दृष्टि भी इस काल में देखने को मिलती है, जिसमें कबीर अग्रणी है जो स्त्री को माया के रूप में देखते है और लिखते है–

"नारी कुंड नरक का, बिरला थामे बाग
कोई साधुजन उबसे, सब जग मुआ लाग"[12]

तुलसीदास को भी आलोचक नारी विरोधी मानते हैं तथा उन्हें सामंतवाद के पक्षधर के रूप में देखते है। लेकिन सोचने वाली बात है कि तुलसी कि नारी विरोधी उक्तियाँ खलनायकों के मुहँ से कहलवाई गई हैं। इसलिए सवाल यह उठता है कि क्या एस दृष्टि को तुलसीदास कि नारी विरोधी दृष्टि माननी चाहिए ? जबकि रामचरितमानस में राम के माध्यम से कहीं भी तुलसी स्त्रियों के प्रति कोई अनौचित्य पूर्ण वक्तव्य नहीं कहलवाते है। बल्कि जितने भी कथन नारी विरोधी है वह या तो रावण ने कहा है या समुंद्र या अन्य खलनायकों ने –

"नारी स्वभाव सत्य कवि कहहिं अवगुण आठ सदा उर रहहिं"(रावण)
"ढोल,गंवार,शुद्र,पशु,नारी ये सब ताड़न के अधिकारी"(समुंद्र)

भक्ति हृदय का धर्म है और हृदय के धर्मों में सर्वाधिक उदात और व्यापक धर्म प्रेम है। यही प्रेम भक्तिकाव्य का मूल भाव है और सम्पूर्ण भक्तिकाव्य के केंद्र में है। इसलिए यह प्रेम मध्यकाल में मनुष्य को जाति, धर्म आदि सभी से ऊपर उठाकर बैकुंठ की प्राप्ति कराता है–

"मानुष प्रेम भएउ बैकुंठी,नाहीं ट काह छार भरि मुट्ठी।"[13]

प्रेम मनुष्य को सत्ता के भय से मुक्त करता है। इसलिए इस प्रेम कि भूमिका क्रांतिकारी रहती है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि, "भक्ति मार्ग शुद्ध भावमार्ग या प्रेममार्ग है। उसका आधार मनुष्य कि सहज रागात्मिकता वृत्ति है। उसकी पद्धति वह प्रेम–पद्धति है जिसे सब लोग स्वभावतः जानते हैं।"[14] शुक्ल जी ने प्रेम कि विशिष्टता को गहराई से रेखांकित किया है। लेकिन भक्तिकाल के कवियों का प्रेम स्वरुप एक जैसा नहीं हैं। "भक्तिकाव्य का प्रेम भक्ति–आंदोलन कि विभिन्न धाराओं को आपस में मिलाता है। वह वैष्णवों को सूफियों से और निर्गुण संतों को भक्तों से जोड़ता है।कहीं वह सामाजिक मूल्य है तो कहीं सामाजिक कर्त्तव्य।"[15]
कबीर कि कविता में प्रेम एक सामाजिक मूल्य के रूप में है। जिनका मानना है कि प्रेम किसी बाग–बगीचें या खेत में नहीं पैदा होता है और न ही हमें बाजार में बिकता हुआ मिलता है बल्कि प्रेम हमें तब मिलता है जब अपना शीश काट कर जमीन पर रख दिया जाता है। जबकि गोस्वामी तुलसीदास के यहाँ भी प्रेम के शुद्ध रूप का चित्रण राम के माध्यम से प्रकट किया गया है। जिसमे प्रेम का स्वरूप "अनन्यता है, समर्पण है, समस्त बुद्धि का त्याग है।"[16]
जायसी के यहाँ प्रेम का उत्कृष्ट रूप का दर्शन मिलता है। जहाँ ईश्वरीय प्रेम के समानांतर मानवीय प्रेम कि भूमिका को महत्व दिया गया है।जायसी प्रेम को संसार में सबसे सुंदर और काम्य मानते है और काव्य का सर्जनात्मक ऊर्जा मानते है। जायसी मानते है कि प्रेम केवल उनकी कविता का लक्ष्य नहीं है बल्कि संसार की सभी भाषाओं की कविता में जहाँ प्रेम है, वहीं मनुष्य का मन लगता है–

"तुरकी अरबी हिन्दुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महँ मारग प्रेमकर, सबै सराहैं ताहि।।"

सूरदास के काव्य में प्रेम कबीर से अधिक स्वाभाविक और जायसी से कहीं अधिक लौकिक दिखता है। सूर के यहाँ प्रेम की प्रकृति

विशिष्ट है। सूर के प्रेमानुभूति की विविधता और अथाह गहराई का अक्षय श्रोत प्रेम का लौकिक अनुभव है, कोई शास्त्र नहीं है। सूर का प्रेम स्वछंद है और स्वछंद प्रेम कभी कमरे में नहीं किया जा सकता है। इसलिए सूर स्त्री को घर से बाहर निकल कर समाज में स्वतंत्र रूप से अपने काव्य में प्रेम का चित्रण करते है। सूर प्रेम के दोनों पक्षों का चित्रण बेहद कोमलता से करते है। जहाँ संयोग में सूर प्रणय व्यापारों के सभी पहलुओं का अकुंठ मन से चित्रण किया है वहीं वियोग के माध्यम से नारी हृदय की कोमलता का आद्र चित्रण किया है।

"आज रैन ना नींद परि
जगत जगत गगन के तारे
रसना रहत गोविंद हरि"

मीरा के काव्य में प्रेम का विद्रोही रूप देखने को मिलता है। जो प्रेम का मार्ग कबीर, सूर और जायसी के लिये भी कठिन था उस मार्ग पर चल के मीरा ने प्रेम के नये रूप का दर्शन दिया। मैनजर पांडेय इस संदर्भ में सटीक लिखते हैं कि "भक्तिकाल के कवियों में मीराबाई का प्रेम अधिक सहज,उत्कट और विद्रोही है।उनके प्रेम कि अभिव्यक्ति के लिये किसी बिचवई कि जरुरत नहीं है; ना कबीर कि तरह रूपक की, न जायसी कि तरह लोककथा की और न सूर की तरह गोपियों की। वहां सीधा और प्रत्यक्ष प्रेम–निवेदन है, निर्भय और निर्द्वन्द्व आत्माभिव्यक्ति।"[17] मीरा अपने संघर्ष की परिस्थितियों से बखूबी सजग थी और अपनी विरोधी शक्तियों के खुंकार स्वाभव को पहचानती थी इसीलिए वह कहती है 'तन की आस कबहूँ नहिं कीनो,ज्यां रण मांही सुरो' और विरोधियों को चुनौती देते हुए कहती है–

"लोक लाज कुल कानि जगत की, दह बहाय जस पानी।
अपने घर का पर्दा कर ले, मैं अबला बौरोनी।।"

भक्तिकाव्य लोकजागरण का क्रांतिकारी साहित्य है। जिसमे पहली बार रचनाकारों को अभिव्यक्ति की आजादी मिली। उन्होंने अपने निजत्व को जनता के समक्ष प्रकट किया। इससे पहले जहाँ कविता राजा और सामंतों की झूठी तारीफों में लिखी जाती थी वहीं भक्तिकाल के कवि ने अपने एक आदर्श नायक या आम जन को अपनी कविता के केंद्र में ला कर लोक के कवि बनें। जहाँ सामंती व्यवस्था ने व्यक्ति के निजत्व का दमन कर दिया था वहीं धर्म, वर्ण, सम्प्रदाय और सामाजिक आचार–विचार की कड़ी को तोड़ कर भक्त कवि व्यक्ति स्वाधीनता कि तरफ उन्मुक्त होते हैं।
भक्तिकाव्य एक जातिय आंदोलन था। जातिय आंदोलन का अर्थ है जातिय निर्माण कि प्रक्रिया, जिसका एक अर्थ यह भी है कि लोक भाषाओं कि साहित्य में प्रतिष्ठा। भक्तिकाव्य से पहले की कविताओं में अपभ्रंश भाषा कि प्रबलता थी। अपभ्रंश भाषा अमीरों कि भाषा थी, इसलिए राजदरबारों में,जमींदारों के बीच में अपभ्रंश प्रमुख था। जिसके कारण अधिकांश रचना अपभ्रंश भाषा में रचित है,जो आम जनमानस कि संवेदना से काफी दूर रहा करती थी। लेकिन भक्तिकाव्य के कवि आम जन के कवि थे इसलिए उन्होंने जन भाषा को अपनी रचना का आधार बनाया। कबीर, तुलसी, सूरदास, मीरा, जायसी आदि जैसे सभी कविओं ने लोक भाषा के माध्यम से लोकवादी नवजागरण और आधुनिक चेतना का सूत्रपात किया। शिवकुमार मिश्र लिखते हैं "पहली बार कविता जनता कि भाषा में जन–मन को संबोधित होती है। जन–मन को संबोधित हीनहीं होती जन–मन को,जनता को अपनी आशाओं–आकांक्षाओं को,उनके जीवन में उतारकर, उसे भली–भांति पढ़ते और गुनते हुए, वाणी भी देती है। लोकजीवन के बीच, साधारण जन–मानस के बीच इस भक्ति काव्य की जो लोकप्रियता है उसका एक बड़ा कारण उसका लोक की अपनी भाषा में लिखा जाना है।"[18]

समाज में व्याप्त अनेक प्रकार कि विषमताओं का समाहार भक्तिकाव्य में है। भक्ति–काल के कवियों कि आस्था, उनका स्वाभिमान, उनका लोक से जुड़ना यह सब हमारे लिये वर्तमान में एक मिसाल है। मानुष जीवन के सभी पक्षों को इन कवियों ने अपना आधार बनाया। व्यक्ति ,परिवार, समाज सब के अन्तरंग को इन कवियों ने बखूबी देखा और उनका मार्गदर्शन किया। प्रेम को अपने साहित्य का केंद्र बना कर समाज के समक्ष उसकी शक्ति को उजागर किया। अतः भक्तिकाव्य एक ऐसी विरासत है जिसे अनुग्रह के साथ स्वीकार करना चाहिए और संरक्षण देना चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ी के लिये ये प्रासंगिक बनी रहें।

संदर्भ सूची

1. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य – मैनेजर पाण्डेय, भूमिका से
2. हिंदी साहित्य का इतिहास और भक्ति–आंदोलन – डॉ.गीता शर्मा, पृष्ठ–66 (हिंदी साहित्य का इतिहास पुनर्लेखन की समस्याएं संकलन से)
3. कवितावली – तुलसीदास, पृष्ठ – 1116
4. कबीर ग्रंथावली – हजारीप्रसाद द्विवेदी
5. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ–55
6. कबीर ग्रंथावली – हजारीप्रसाद द्विवेदी
7. भक्ति–आंदोलन और भक्ति काव्य – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ–291
8. मैनेजर पांडेय: संकलित निबंध, पृष्ठ–10 (नेशनल बुक ट्रस्ट)
9. सूरसागर– सूरदास
10. भक्ति–आंदोलन और भक्ति काव्य – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ–265
11. गुरु नानक देव: वाणी और विचार – रमेशचंद्र मिश्र, पृष्ठ – 155
12. कबीर ग्रंथावली – हजारीप्रसाद द्विवेदी
13. पद्मावत – मालिक मोहम्मद जायसी
14. मैनेजर पांडेय: संकलित निबंध, पृष्ठ–18 (नेशनल बुक ट्रस्ट)
15. मैनेजर पांडेय: संकलित निबंध, पृष्ठ–19 (नेशनल बुक ट्रस्ट)
16. भक्ति–आंदोलन और भक्ति काव्य – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ–296
17. मैनेजर पांडेय: संकलित निबंध, पृष्ठ–23 (नेशनल बुक ट्रस्ट)
18. भक्ति–आंदोलन और भक्ति काव्य – शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ–294